संविधान के दायरे का उल्लंघन करती पाठ्यपुस्तकें

विनोद रायना

यह वक्तव्य राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों पर आयोजित राज्य स्तरीय सम्मेलन में दिया गया है। वक्तव्य में कहा गया है कि धार्मिक दुराग्रहों से ग्रसित होने के साथ ही ये पाठ्यपुस्तकें शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से भी बहुत खराब हैं। ये पाठ्यपुस्तकें संवैधानिक मूल्यों-लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समता-का भी उल्लंघन करती हैं। इन पुस्तकों का इस रूप में आना एक लम्बी तैयारी का परिणाम है जिसे धर्म के आधार पर राजनीति करने वाले संगठन अपनी विचारधारा की सरकार नहीं होने पर भी लगातार करते रहते हैं। साथ ही कहा गया है कि किताबें बेहतर बनें इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यपुस्तकों पर विचार विमर्श शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि हो।

राजस्थान की 20 संस्थाएं जिन्होंने मिलकर आज यह संगोष्ठी आयोजित की है, हम धन्यवाद करते हैं और यह भी कहना चाहते हैं कि हम केवल चार-पांच लोग ही नहीं हैं जो इस मुहिम में राजस्थान के बाहर से आए हैं, बल्कि बहुत सारे लोग जो अभी यहां पर उपस्थित नहीं हैं; आपकी सराहना करते हैं। जिस तरह की राजनैतिक परिस्थितियां राजस्थान में हैं, उसमें इस तरह की बैठक करना, इसमें जो विचार विमर्श होगा और उसके बाद जो कार्य योजना बनेगी उसको उठाने का जो जिम्मा आप लोगों ने लिया है वो बाहर के लोगों को भी साहस देता है। जिस तरह के राजनैतिक माहौल में जिस तरह की किताबें बनती हैं, वह राजनैतिक माहौल केवल शिक्षा तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि वो हर तरह की एक अलग आवाज को दबाने की कोशिश करता है और इसमें इस तरह की गोष्ठियां भी शामिल हैं। आपने हमें यहां बुलाया है और ये बातचीत कर रहे हैं, हम सब लोग भी सम्बल महसूस कर रहे हैं।

पाठ्यपुस्तकों का मामला मूलतः एक बड़ी राजनीति का विषय है। शिक्षा तो उसका एक छोटा- सा हिस्सा है और इस राजनीति को यहां सब लोग जानते-पहचानते हैं। किताबों की जो बात अगले सत्र में होगी उसको अच्छी तरह से समझने के लिए और उसको एक परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए यह कहना जरूरी है कि जिस प्रकार की स्थिति आज पैदा हुई है, इसके बीज शायद 75-77 साल पुराने हैं। ये कोई आज की बात नहीं है और किसी एक तिथि से इसकी शुरूआत को बताना बहुत मुश्किल है कि यह जब से हुआ, लेकिन हम कह सकते हैं कि यह मामला राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के जन्म के साथ जरूर जुड़ा हुआ है। यह मसला जिस राजनीतिक विचारधारा से जुड़ा हुआ है, जिस राजनैतिक विचारधारा की हम बात कर रहे हैं और जिसके अन्तर्गत यह सब आज के दिन हो रहा है; उसकी जड़ें केवल सरकार में ही नहीं हैं, उसकी जड़ें समाज में भी हैं। और मुझे लगता है कि हमारे लिए इस बात को समझना बहुत जरूरी होगा।

मैं यह मानता हूं कि इस देश में शिक्षा का सबसे बड़ा एनजीओ (स्वयं सेवी संगठन) राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आरएसएस) है। मैं कई सालों से कहता आ रहा हूं कि हम स्वयं सेवी संगठनों की बहुत बात करते हैं जो शिक्षा में काम करते हैं लेकिन

लेखक परिचय :

एकलव्य, भोपाल के संस्थापक सदस्य, राष्ट्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद के सदस्य, भारत ज्ञान विज्ञान समिति के राष्ट्रीय समन्वयक

सम्पर्क :

डी-3, कैबलरी लेन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007

शिक्षा का सबसे बड़ा संगठन आरएसएस था, जिसे अब मैं संघ परिवार कहूंगा; क्योंकि इसमें और घटक भी जुड़ गए हैं, जिनकी शिक्षा में बहुत पकड़ है। यह जरूरी नहीं है कि वे तभी उभरते हैं जब उनकी सरकार बनती है। जब उनकी सरकार नहीं भी होती है तब भी वे अपना काम करते रहते हैं। लेकिन पिछले 75 वर्षों से इस बात पर हम जैसे लोगों ने, जिनकी शिक्षा के प्रति कुछ अलग समझ है, शायद बहुत ध्यान नहीं दिया। और जिस तरह से उसकी पहुंच उत्तर भारत के बहुत से प्रदेशों में, दूर-दराज के गांवों तक इन वर्षों में हुई है, मैं मानता हूं कि आज हम जो बात करने वाले हैं, उसकी नींव में वह काम है और वे संगठन हैं; जो बहुत फैले हुए हैं। मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि जब हम बात करेंगे कि क्या करें तो कुछ बात तो हमें ऐसी करनी पड़ेंगी कि हम तत्काल क्या करेंगे। लेकिन साथ में यह भी हमें ध्यान रखना होगा कि तत्काल हम जो भी करेंगे यदि हमें इसका मुकाबला करना है तो इसमें हमें लम्बे अर्से की सोच भी साथ में रखनी होगी, नहीं तो यह चीजें बार-बार उभरती आएंगी; क्योंकि इसका एक क्रम है।

सबको मालूम है, इसलिए मैं यहां बहुत तथ्यों में नहीं जाऊंगा, 1992 में क्या हुआ जब बाबरी मस्जिद तोड़ी गई और चार प्रदेशों में भारतीय जनता पार्टी की सरकार आई थी ? उस समय क्या हुआ जब 1990 से चली आ रही सरकारों ने किताबों को मध्य प्रदेश में, उत्तर प्रदेश में अलग तरह की बनाने का काम शुरू किया ? लेकिन वह काम शुरू इसलिए हुआ क्योंकि इस तरह की राजनैतिक पार्टियों के पास इस तरह के लोग हैं जो इस तरह का काम कर सकते हैं। और ये वे लोग हैं जो कि पार्टी से नहीं उभरे हैं। ये लोग सिविल सोसाइटी, एनजीओ या सोशल मूवमेंट; जो भी हम नाम देना चाहते हैं, वे वहां से उभरते हैं। वह विद्या भारती संस्थान है, जो कि उनका संदर्भ केन्द्र है। उनके सारे कामों का एक तरह का संदर्भ केन्द्र है-किताबें बनाने का, प्रशिक्षण देने आदि का। और वह सरस्वती शिशु मंदिर प्रतिष्ठान है जो कि उनके लिए एनसीईआरटी की तरह काम करता है जो उनके लिए पूरक सामग्री बनाने एवं प्रशिक्षण दिलाने का काम करता है। उनके इस तंत्र का पूरा इस्तेमाल तो तब होता है जब पार्टी सत्ता में आती है। इस तरह की चर्चाओं के साथ हमें यह ध्यान में रखना होगा कि यह कोई आकस्मिक चीज नहीं है जो कभी राजस्थान में, कभी मध्यप्रदेश में, कभी उत्तर प्रदेश में, कभी छत्तीसगढ़ में या अन्य जगहों पर हो रही है। यह एक बहुत बड़ा ढांचा है, जैसा कि मैंने कहा कि, जिसकी समाज और राज्यसत्ता दोनों में पकड़ है। सवाल हमें आज यह करना होगा कि यदि हमें इसका सामना करना है तो क्या-क्या सोचना होगा और क्या करना होगा ?

सबसे पहली बात यह कि, ये जो विकृतियां हैं, आप चाहे इन्हें विकृतियां कहें या जो भी नाम देना चाहें; जिन्हें हम राजस्थान सरकार द्वारा निर्मित इन आरम्भिक और माध्यमिक स्तर की किताबों में देखते हैं। ये मामला केवल किताबों को सांप्रदायिक करने का या किताबों को धर्म के साथ जोड़ देने का ही नहीं है। किताबों को सांप्रदायिक करने की या धर्म से जोड़ने की विकृति तो सामने आती है लेकिन इन पाठ्यपुस्तकों में यह विकृति इससे कहीं ज्यादा गहरी है। गहरी इस तरीके से है कि एक मिनट के लिए मान लीजिए कि राजस्थान की इन किताबों में, जो यहां पर बहुत से लोगों ने देखी हैं; मैंने भी देखी हैं, इस तरह से धर्म और जात-पात से जुड़ी हुई चीजें एक मिनट के लिए नहीं होतीं, तो क्या ये किताबें अच्छी हैं ? मेरा यह कहना है कि ये बहुत बुरी किताबें हैं। अगर इनमें इस तरह की चीजें न भी होतीं तो भी ये बच्चों के लिए बहुत हानिकारक किताबें हैं। जिस तरह से इनको लिखा गया है और इनको प्रकाशित किया गया है-दोनों ही लिहाज से ये बहुत बुरी किताबें हैं। ये समस्या इन किताबों में है।

सरकारी किताबों और मैं कहूंगा निजी प्रकाशनों द्वारा प्रकाशित किताबों में कोई बहुत फर्क नहीं है। शिक्षा में हमें बच्चों को कैसे सिखाना है ? बच्चे कैसे सीखेंगे ? किस तरह की सामग्री होगी ? आदि सवालों पर इन पुस्तकों को बनाते हुए नहीं सोचा गया है और इसकी कमी तो किताबों में धार्मिक विकृति के बगैर भी मौजूद है। मैं यह कहूंगा, चूंकि यह कमी है इसलिए इस तरह की और चीजें जोड़ने का वह मौका देती है। इन चीजों का अभाव ही एक जगह बनाता है कि आप जैसी मर्जी है वैसी ही चीज विषयवस्तु के रूप में डाल दीजिए। यही मानकर विषयवस्तुओं का पुलिंदा तैयार किया जाता है कि आपने कोई भी जानकारी उसमें डाल दी और वह जानकारी रट लो और उसका इम्तिहान दो। यदि आपने पाठ्यपुस्तक निर्माण का यह तरीका अपनाया तो फिर जिसको जो जानकारी जब पसंद होगी वह उसे डालेगा। और जो राज्यसत्ता में होगा और जो उसकी नजर से ठीक जानकारी है, वह उसे डाल देगा। इसमें कहीं यह बात नहीं आती है कि क्या किताबें केवल एक तरह की सोच को ही आधार बना सकती हैं या किताबें बनाने का आधार कुछ अलग होने चाहिएं ?

आखिर हम पाठ्यपुस्तकों से क्या चाहते हैं ? किस तरह से बच्चा आगे बढ़े ? किस तरह का नौजवान बने ? पाठ्यपुस्तकों का मामला इससे बहुत जुड़ा हुआ है। और मेरा यही अनुभव है कि मध्यप्रदेश में आज से 35 साल पहले जब हमने काम करना शुरू किया, वहां की किताबों में ये धार्मिक और जात-पांत की विकृतियां इस तरह से नहीं थीं, लेकिन वे किताबें बहुत खराब थीं। और इसमें

कोई आश्चर्य नहीं है कि जब वहां पर अलग तरह के लोग आ गए तो उन्होंने अलग तरह की चीजें काट दीं और वहां जोड़ दीं। कुछ चीजें यहां से उठाकर वहां जोड़ दीं। यह करना बहुत आसान है क्योंकि इस तरह से पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में कोई पद्धति काम नहीं कर रही होती है। ऐसा करने में कोई शिक्षा पद्धति काम नहीं कर रही होती। उनमें कोई शिक्षाशास्त्रीय मान्यताएं नहीं होतीं। उनमें इस बात का फर्क कहीं नजर नहीं आता है कि आप बच्चों को जानकारी हासिल कराने के तरीके सिखा रहे हैं या जानकारी थोप रहे हैं। इस प्रक्रिया में, जैसा मैंने कहा, किताबों में फेर-बदल करना या इस रूप में पेश करना बहुत ही आसान है। अब सवाल यह है कि अगर ऐसा है तो कौन चाहता है यह किताबें ? और अगर हमें इन्हें बदलने की कोशिश करनी है तो क्या हमारे लिए केवल यह कहना काफी होगा कि यह वाले पैराग्राफ हटा दीजिए और यदि ये पैराग्राफ हटा दिए तो पाठ्यपुस्तकें अच्छी हो गईं। इसके ऊपर हमें आज बातचीत करनी चाहिए।

इसके साथ ही जुड़ा हुआ मामला यह है, बहुत से लोग कहते हैं कि भई नीचे से लोगों की यह मांग है और हम तो इस मांग को पूरा करने की बात कर रहे हैं। लोग कहते हैं कि हमारा देश तो धार्मिक देश है, यहां पर 99.99 प्रतिशत लोग धर्म को मानते हैं। यदि ऐसा है तो आप धर्म को किताबों के बाहर कैसे रख सकते हैं? यह तर्क दिया जाता है। फिर एक सवाल यह भी उठता है कि हम धर्म को किताबों से हटा दें या हम धर्म को किताबों में किसी दूसरे तरीके से पेश करें ? सवाल यह नहीं है कि धर्म को हटा दें या रखा जाए। सवाल यह है कि उसको हम किस रूप में, किस तरीके से किताबों में रखें ? पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में यह बहुत बड़ा प्रश्न होता है। और हम में से बहुत सारे लोग जो वैकल्पिक तरीकों से काम करते हैं, चाहे वे दिगन्तर में हों, चाहे वे बोध में हों, कहीं भी हों; यह सवाल हमेशा आता है कि हम अपनी किताबों में धर्म को कैसे स्थान देंगे ? और यह ध्यान देना, जैसा कि आप में से बहुत से लोगों को मालूम है, सवाल केवल यह नहीं होता है कि जानकारी कितनी दें। फिर सवाल उठता है कि वे तरीका क्या हो जिससे कि बच्चों को ये जानकारियां दी जाएं। और जब हम तरीके की बात करते हैं तो वह केवल विषयवस्तु तक ही सीमित नहीं रहता। लेकिन आज के दिन, चाहे इसे आप आंदोलन कहिए या विरोध कहिए या वैकल्पिक पक्ष को सुदृढ़ करने की बात कहिए; ये बात आप किसी भी रूप में करें, हमें कुछ बातें सोचनी पड़ेंगी, ध्यान रखनी पड़ेंगी।

1992 में जब बाबरी मस्जिद का किस्सा हुआ तब मध्य प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार थी। आप में से बहुत से नौजवान लोगों को मालूम नहीं होगा, एकलव्य के ऊपर संघ परिवार के लोगों ने हमला भी किया था। देवास जिले में एकलव्य का जो दफ्तर है वहां पर तोड़-फोड़ की गई थी और उस समय की भारतीय जनता पार्टी सरकार ने एकलव्य के सभी प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगा दिया था। खासकर एक छोटी-सी किताब-जिसका नाम है 'इतिहास क्या है ?' भई, सड़क पर क्या घटा ? वो छोटी-सी पुस्तक यह कहने के लिए थी कि भई, इतिहास केवल राजा-महाराजाओं का इतिहास नहीं होता है। जो गांव में होता है, सड़क पर होता है, वह भी इतिहास होता है। और हम उस इतिहास को कैसे उभारें ? वह एक छोटी-सी पुस्तिका थी लेकिन उसके ऊपर प्रतिबंध लगा दिया कि आप इसको वितरित नहीं कर सकते हैं।

ऐसी स्थिति में क्या किया जा सकता है ? उस समय हम लोगों ने यह तय किया था, जैसे आपको मालूम होगा कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश एक ऐसा इलाका है जहां पर संघ परिवार की गांव-गांव तक बहुत गहरी पकड़ है। हमने सोचा कि क्यों न हम अपनी समझ बढ़ाने के लिए ऐसा करें कि जो गांव के, छोटे शहरों के बच्चे शाखाओं में आते हैं, उनसे बातचीत की जाए। उन शाखाओं के आयोजकों से नहीं, बल्कि ये जो बच्चे आते हैं, उनसे बातचीत करें। थोड़ा पता करें कि इनको क्या खींचकर लाता है इन शाखाओं में। हम लोगों ने उस समय लगभग 4-5 हजार बच्चों के साथ लगभग छः जिलों में, मालवा के छः जिलों में-इंदौर, उज्जैन, देवास, शाहजहांपुर, रतलाम झाबुआ-बच्चों से बात की। हम उनसे सवाल पूछते थे कि भई तुम्हें क्या खींच के लाता है ? तुम क्यों जाते हो शाखा में ? वहां पर तुम्हें क्या अच्छा लगता है ? क्यों गए हो तुम वहां पर ? और यकीन मानिए कि इतने हजार बच्चों से बात करते हुए जो जवाब मिला वह इस तरह का था कि हम देश के लिए कुछ करना चाहते हैं। ये लोग सामने आते हैं तो हम इनके साथ हो जाते हैं। कोई दूसरा आता ही नहीं है। अब आप आए हैं तो आप से बात करेंगे। और पहली दफा हमको अपनी कमी महसूस हुई, एक बहुत ही प्रखर रूप में। हम गोष्ठियों वगैरह में बैठकर बात करते हैं कि, भई ये लोग क्या कर हैं ? कैसे जहर फैला रहे हैं ? ये सब तो हम करते हैं लेकिन शाखाओं के साथ जुड़ने वाले गांवों के नौजवान कह रहे हैं कि भई हम तो देश के लिए कुछ करना चाहते हैं। इन नौजवानों में एक आदर्शवाद है, जो शायद शहरों में खत्म हो चुका है कि वो अभी भी देश के लिए कुछ करना चाहते हैं। लेकिन उनका कहना है कि ये आते हैं सामने तो हम इनके साथ हो जाते हैं। कोई दूसरा तो आता नहीं है। तो सवाल फिर हम पर यह आता है कि अगर हम केवल एनसीईआरटी में बैठकर या केवल एससीईआरटी में बैठकर या विश्वविद्यालयों में बैठकर या कैब में बैठकर सरकारों से कहें कि आप यह हटाइए, यह विषरहित (डीटोक्सीफाइड) करिए या एनसीईआरटी का निदेशक बदलिए। इस तरह हम जो भी करते

रहें, लेकिन वे लोग गांव-गांव जाकर उन लोगों के बीच जाते हैं जो देश के लिए कुछ करना चाहते हैं। लेकिन हम ऐसा नहीं कर रहे हैं। तो क्या हम इस समस्या का कभी कोई निदान कर सकते हैं या नहीं ? और मैं यह सवाल हम सब के सामने रखना चाहता हूं क्योंकि यह सवाल हम सबको परेशान कर रहा है। हम ज्यादातर स्वयंसेवी संगठनों के लोग यहां बैठे हैं। क्या हम मानते हैं कि एक राजनीति जो गांव-गांव में इतने गहरे रूप में फैली हुई है उसे केवल सरकार को कहकर कि भई तुम सरकार इसको बदल दो, सरकार तुम ये कानून लाओ, सरकार तुम ये किताब निकालो, क्या इसका मुकाबला हो सकता है ? और फिर सवाल दूसरा उठेगा कि अगर वे इस तरह से संगठित हो सकते हैं तो क्या हम नहीं हो सकते ? क्या सिर्फ एनजीओ बनाकर, कुछ प्रोजेक्ट लेकर हम इस तरह की फैली हुई राजनीति का, जिसकी पकड़ इतनी गहरी है, उसका सामना कर सकते हैं ? मैं जितने सवाल उठा रहा हूं ये मैं किसी व्यक्ति विशेष से नहीं अपने से ही सवाल कर रहा हूं। क्योंकि जैसा हम आज बात करेंगे, हमें बात करनी चाहिए कि तत्काल क्या करेंगे। मैंने पहले जो बताया, यह उससे हट कर नहीं है। लेकिन जो ये किस्से हो रहे हैं जगह-जगह पर और मेरा यह मानना है कि होते रहेंगे। अगर हम सरकारी हस्तक्षेप के अलावा इससे लड़ना चाहते हैं तो क्या हम उस लड़ाई के लिए संगठित हैं ? और यदि नहीं हैं तो क्या संगठित होने की हममें इच्छा है ? और इसके लिए हमें क्या करना होगा ? यह सवाल हमें आज की संगोष्ठी में और बार-बार अपने से पूछना होगा। क्योंकि आप बहुत बड़े बर्फ के ढके हुए पहाड़ पर हवाई चप्पल पहन कर नहीं चढ़ सकते। आपको उसके लिए तैयारी करनी पड़ेगी कि इस पर कैसे चढ़ेंगे ? अगर आपको यह सवाल विचलित कर रहा है तो तैयारी करने का मतलब क्या है ? और उस तैयारी को करने को हम कितने आश्वस्त हैं, संगठित हैं और हमारा ध्येय क्या है ?

1993 में, बाबरी मस्जिद के बाद जब यह बात बहुत प्रखर रूप से सामने आई कि भई जो एक-दो लाख लोग वहां फैजाबाद में थे वे कोई असाक्षर, गांव के लोग नहीं थे। उनमें से लगभग सभी नौजवान पढ़े-लिखे थे। चाहे वे बजरंग दल के थे या विश्व हिन्दू परिषद के थे, लेकिन पढ़े-लिखे थे। उस समय यह बात उभरी कि भई इतने बड़े समुदाय का दिमाग कैसे बदला गया कि वे इस तरह की हिंसा पर उतर आए ? और मुझे लगता है कि यह पहली बार हो रहा था जब लोगों ने बहुत गहराई से समझने की कोशिश की कि देश में इस तरह का दिमाग कैसे बनाया जा रहा है ?

1993 में प्रोफेसर बिपिन चन्द्र की अध्यक्षता में एक समिति बनी जिसमें सरस्वती शिशु मंदिर और आदर्श विद्या मंदिर में जो किताबें चलती हैं उनका बहुत विस्तृत अध्ययन किया गया। और 1993 की यह रिपोर्ट एनसीईआरटी के माध्यम से छापी गई थी। जिसमें, मैं उस समिति के साथ था, मुझे भी पहली दफा इन किताबों का अध्ययन करने का मौका मिला और यह भी समझ में आया कि कैसे काम होता है इन सभी स्कूलों में। सरस्वती शिशु मंदिर स्कूल आपके जयपुर में, राजस्थान में तो फैले हुए हैं। ये सब राज्य सरकार से मान्यता प्राप्त होते हैं। इस वजह से ये सब राज्य सरकार का ही पाठ्यक्रम काम में लेते हैं।

जब राजस्थान में कांग्रेस के अशोक गहलोत की सरकार थी तो ये स्कूल वही पाठ्यक्रम चला रहे थे जो राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त था। लेकिन ये ऐसे में पूरक किताबें साथ में देते हैं। जो सरस्वती शिशु प्रतिष्ठान और विद्या भारती मिलकर बनाते हैं। उस समय इनकी पूरक किताब थी उसका नाम था गौरव गाथा, जो कक्षा 3 से लेकर बड़ी कक्षाओं तक क्रम में चलती थी। उन गौरव गाथा किताबों को हमें भी देखने का मौका मिला था। आज भी मुझे याद है, उस रिपोर्ट में भी उसके अंश हैं, जैसे आज आपने राजस्थान की किताबों के छापे हैं; गौरव गाथा नाम उन्हें क्यों दिया गया था ? क्योंकि हमारे देश का इतिहास एक गौरव का इतिहास है और कौनसे गौरव का इतिहास है ? वह गौरव है 11वीं शताब्दी से लगातार बाहर से आए हुए लोगों को बाहर करने का हमारा इतिहास है। ये उसका फ्रेम वर्क था। इसीलिए गौरव गाथा नाम दिया गया था कि कैसे हम 11वीं शताब्दी से बाहर से आए हुए लोगों को बाहर धकेलते रहे हैं। और फिर उसमें इस बात के विवरण हैं कि उसमें शिवाजी ने क्या भूमिका अदा की और किसने क्या भूमिका अदा की। और तलवार की नोक पर जो लोग यहां आए थे उनको तलवार की नोक से कैसे बाहर निकाला है। उस बाहर निकालने में उस समुदाय के लोगों को मारना, काटना, जलाना, महिलाओं के साथ हिंसा करना, इस सब का उसमें खुला वर्णन है। सब कुछ खुले में है। गौरव गाथा का पूरा कहना यह था कि हमारे देश में एक ही धर्म हो सकता है। बाकी धर्म बाहर से आए हुए हैं। उसमें ईसाई धर्म भी है और इस्लाम तो है ही। और यदि इस गौरव गाथा को पूरा करना है तो इन सब धर्मों को हटाना है तभी जाकर अखंड भारत बन पाएगा। मेरे ख्याल में गौरव गाथा एक स्रोत है। जब भी और जहां भी जितनी भी जगह मिलती है, जिस किसी सरकार में मौका मिलता है उसके अंश वहां डाल दिए जाते हैं। अब गौरव गाथा की वह सीरीज बदल कर नई आई है और वह इससे भी थोड़ी विकृत ही है। उसमें बाबरी मस्जिद का भी जिक्र है। यदि ये सीरीज आएगी तो लगातार यह चीज ही आएगी। चिन्ता की बात यह है कि अब उनका संदर्भ केन्द्र बन चुका है। हम लोग भी संदर्भ केन्द्र

बनाते रहते हैं। हम सोचते हैं कि हमारे संदर्भ केन्द्र बनेंगे और वहां से हम अलग किताबें वगैरह बनाएंगे। लेकिन उनके भी अब बड़े संदर्भ केन्द्र बन चुके हैं और उस संदर्भ केन्द्र की चीजों को लोगों तक पहुंचाने के उनके अलग-अलग प्रतिष्ठान भी हैं। जैसा आपको मालूम होगा-जिसको हम आरएसएस कहते हैं, उसके अलग-अलग 85 मान्यता प्राप्त संस्थान हैं। जिसमें पूना में एक संस्थान है जो आईएएस के लिए भर्ती पूर्व के प्रशिक्षण देता है। वे फिर आईएएस की परीक्षा देते हैं। जो आईएएस में जाएं उनका भी पहले से ही इस रिसोर्स से ऐसा दिमाग बन जाए जो कि उनकी विचारधारा को आगे बढ़ाने में मदद करें। तो ये 85 सिरों का रावण है जिसमें इतना काम हो चुका है। मेरा मानना है कि ये वे सिर हैं जो बार-बार उठते रहेंगे। और जिस सरकार में ज्यादा जगह मिलेगी वहां पर अलग-अलग रूप से आएंगे।

अंत में दो बातें और कहना चाहूंगा, भले ही जो विकृत चीजें इन पाठ्यपुस्तकों में हैं वे इन किताबों से हट जाएं लेकिन मुख्य सवाल ये है कि किताबें कैसी बननी चाहिएं ? किताबों और बच्चों के बीच कैसा तालमेल होना चाहिए ? हम किताबों के क्या उद्देश्य मानते हैं ? शिक्षा के किन उद्देश्यों से किताबों को जोड़ रहे हैं ? ये जो व्यापक बातें हैं, इनको किए बिना हम यह नहीं कह सकते हैं कि किताबों से केवल ये वाले हिस्से हटाइए।

दूसरी बात, अगर इस बहुत बड़े रावण का, जिसकी समाज में भी और सरकार में भी दखल है, इसका विरोध करना है तो हमें अपने संगठनों और संस्थाओं को कैसे तैयार करना होगा ? बच्चों की बेहतर शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी लोगों को इस बारे में भी सोचना होगा। और यह बहुत आश्चर्य की बात नहीं है जब पिछले साल राष्ट्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद (कैब) की मीटिंग हुई थी जहां पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 को राष्ट्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद में रखा गया था। संघ परिवार के जितने भी राज्य हैं, उनके जितने भी शिक्षामंत्री हैं उन्होंने वहां पर वॉकआउट किया था। वॉकआउट करते हुए कहा था कि हम इस राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा को नहीं मानते। और वॉकआउट करते हुए राजस्थान के शिक्षा मंत्री ने यह एलान किया था कि हम राजस्थान में अलग किताबें बनाने वाले हैं। उन्होंने यह ऐलान किया था। यह सब हमारे लिए कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है कि उन्होंने अलग से किताबें बनाईं। शिक्षा से जुड़े मुद्दे बहुत पेचीदा मुद्दे हैं। शिक्षा को समवर्ती सूची में माना जाता है जिसमें राज्य सरकार की और केन्द्र सरकार की भी, दोनों की, जिम्मेदारी है। तो अगर कोई राज्य सरकार ऐसी किताबें बनाती है तो केन्द्र सरकार क्या कर सकती है, इस पर भी बहुत साफ स्थिति नहीं है। मुझे लगता है कि केन्द्र सरकार राज्य सरकार को कह सके कि तुम यह किताब नहीं बनाओगे, इन चीजों पर बहुत साफ समझ है नहीं। लेकिन राज्य सरकार ने घोषणा की थी कि वे अपनी किताबें बनाएंगे। यह तो बिल्कुल साफ है कि उन्होंने घोषणा करके यह किताबें बनाईं। कोई पीछे से नहीं बनाईं। और उच्चतम न्यायालय में जब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2000 को चुनौती दी गई थी तो उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि उसको चुनौती नहीं दे सकते। उस अपील को उसने खारिज कर दिया था। इस मामले को न्यायालय, विधान सभा एवं अन्य जगहों पर उठाया तो जा सकता है लेकिन इसका जो इतिहास रहा है वह बहुत अच्छा नहीं है और मैं यह कहूंगा कि वह प्रभावशाली नहीं है।

और अंत में, मैं यही कहना चाहता हूं कि ये किताबें शिक्षा के मूल्य वगैरह के हिसाब से, शिक्षा की पद्धति के हिसाब से तो अच्छी हैं ही नहीं लेकिन यह देश अभी भी देश है, नेशन है क्योंकि इसका एक संविधान है। हर नेशन का एक संविधान होता है। जिसमें लोग कहते हैं कि इस संविधान के अंतर्गत हम अपना नेशन बना रहे हैं। हिंदुस्तान के इस नेशन के संविधान में अभी भी जो मूलभूत मूल्य हैं - वह प्रजातंत्र है, वह धर्मनिरपेक्षता है, वह समाजवाद है। इसके अंतर्गत राजस्थान भी है, मध्यप्रदेश भी है। तो यह बात साफ है कि यदि पाठ्यपुस्तकों में इन मूल्यों का अगर उल्लंघन हो रहा है तो यह उल्लंघन कोई भी सरकार नहीं कर सकती। यदि कोई सरकार इनका उल्लंघन करती है तो उसको अलग देश बनाना होगा। और मुझे लगता है कि इस बात को हम हमेशा याद रखें, जहां हम शिक्षा के अंतर्गत शिक्षाशास्त्र की बात करें वहीं पर हम यह बात करें कि कोई भी चीज जो लिखित हो, खासकर शिक्षा में हो, बच्चों के बारे में हो; सरकार की बनाई हो वह संविधान के मूल्यों के खिलाफ नहीं जा सकती है। और राजस्थान की ये पाठ्यपुस्तकें विकृत रूप में संविधान का उल्लंघन करती हैं। यह बात हम लोगों तक कैसे ले जाएं, न्यायालय तक कैसे ले जाएंगे, इसके ऊपर बातचीत होगी तो अच्छा रहेगा। ◆